कषाय-प्रतिक्रमण : भावशुद्धि का सूचक

मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा.

आज धर्मक्रियाएँ भी हो रही हैं और प्रतिक्रमण भी किया जा रहा है, किन्तु राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया एवं लोभ कषायों में कितनी कमी हो रही है, इस पर ध्यान ही नहीं जाता। मिथ्यात्वादि से सम्बद्ध पंचविध प्रतिक्रमण में कषाय-प्रतिक्रमण का विशेष महत्त्व है। कषाय के बढ़ते वेग को रोककर विभाव से स्वभाव में तथा विषमभाव से समता भाव में आना ही कषाय-प्रतिक्रमण का स्वरूप है। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के आज्ञानुवर्ती मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. ने लक्ष्मीनगर स्थानक, जोधपुर में २० जून २००६ को कषाय प्रतिक्रमण पर प्रवचन फरमाया था, जिसका संकलन जिनवाणी के सह-सम्पादक श्री नौरतन जी मेहता द्वारा किया गया है।

-सम्पादक

श्रमण भगवान महावीर स्वामी का शासन सदा जयवन्त है। प्रभु महावीर के शासन में धर्म-साधना का सुन्दर अवसर प्राप्त हो रहा है, साथ ही साथ वीतराग वाणी श्रवण करने का दुर्लभ अवसर भी प्राप्त हो रहा है। एक सच्चा साधक जिसको आत्म-धर्म पर पूर्ण विश्वास है, पुण्य-पाप पर विश्वास है, स्वर्ग-नरक पर विश्वास है ऐसा जागरूक साधक वीतराग वाणी पर निश्चय ही विश्वास करता है। वीतराग वाणी के माध्यम से आत्म-साधना के लिए साधक के कुछ आवश्यक कर्त्तव्य बताये हैं उनमें एक आवश्यक कार्य है-प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण आवश्यक सूत्र है तो वह साधक की आत्म-डायरी भी है। प्रतिक्रमण आत्म-शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। सरलता और सौम्यता का राजमार्ग है। मर्यादित जीवन का सुरक्षित कवच है। कथनी-करनी की एकरूपता का सेतु है। भवरोग-निवारक अचूक औषधि है। साधना की निर्मलता का श्रेष्ठतम सोपान है। शल्यमुक्त जीवन का मंत्र है। श्रद्धा और आस्था का संवाहक है। संयमी जीवन की दीप्तिमान ज्योति है।

भगवान ने पाँच प्रकार के प्रतिक्रमण बताये हैं- मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण और अशुभयोग का प्रतिक्रमण। हर एक प्रतिक्रमण एक-दूसरे का पूरक है। किसी प्रतिक्रमण को हम न छोटा कह सकते हैं, न बड़ा। एक को महत्त्वपूर्ण बताकर दूसरे को कम नहीं कह सकते। आज हम कषाय प्रतिक्रमण पर विचार करेंगे।

कषाय का प्रतिक्रमण भाव शुद्धि का सूचक है। कषाय का प्रतिक्रमण हमारे जीवन-शुद्धि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगशाला है। आत्म-शुद्धि के लिए कषाय का प्रतिक्रमण आवश्यक है क्योंकि कषाय ही जन्म-मरण रूप संसार वृक्ष को हरा-भरा रखने वाला है, कषाय ही समस्या में वृद्धि करने वाला है। इस कषाय के कारण से ही घर, परिवार और समाज में दूरियाँ बढ़ती जाती हैं और व्यक्तिशः जीवन अशान्त बनता जाता है। यदि गहराई से सोचें तो शारीरिक रोगों का मूल कारण भी कषाय ही है। प्रसन्नता के बाग में आग लगाने वाला, समरसता की सरिता में विष घोलने वाला, धैर्य की धरती में भूकम्प लाने वाला यदि कोई है तो वह कषाय ही है। जीवन शान्त, प्रशान्त, समाधिवन्त बना रहे, इह लोक-परलोक का वातावरण सुखद बना रहे तो उसका एकमात्र उपाय कषाय प्रतिक्रमण ही है। आज बाह्य धर्म-साधना तो बहुत बढ़ती जा रही है। आप देखते हैं, अनुभव भी करते हैं कि हमारे भाई धर्म-स्थान में बहुत बड़ी संख्या में आते हैं। हम पुराने समय की वर्तमान से तुलना करें तो लगेगा कि आज धर्म-साधना के प्रति पहले से ज्यादा सजगता है। पहले इतनी तपश्चर्याएँ नहीं होती थीं, जितनी आज हो रही हैं। प्रवचन-सभा में भी आज उपस्थिति पहले की अपेक्षा अधिक रहती है। दया-संवर और पौषध की साधना में भी इजाफा हुआ है। पुस्तकों का प्रकाशन भी पहले से ज्यादा हो रहा है। धर्म-साधनाएँ पहले भी होती थीं, किन्तु आज पहले की अपेक्षा चाहे दया हो, चाहे संवर हो, बढ़ी ही हैं। पहले इतने शिविर नहीं लगते थे, जितने आज जगह-जगह पर लग रहे हैं।

हम विचार करें- एक तरफ धर्म-साधना बढ़ रही है, बढ़नी चाहिए लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी विचारणीय है। हमारी बात कषाय के प्रतिक्रमण को लेकर चल रही है। इतनी-इतनी तपश्चर्या, साधना-आराधना, सामायिक-स्वाध्याय, दया-संवर के चलते हुए जीवन में कितना परिवर्तन हुआ है, कितना हो रहा है? इस पर भी हमें कुछ विचार करना चाहिये। मूल्य गणना का नहीं, मूल्य गुणात्मक स्वरूप का है। संख्या कितनी है इसका उतना महत्त्व नहीं जितना साधना कितनी निर्दोष की जा रही है, उसका महत्त्व है। संख्या के बजाय जीवन में परिवर्तन का मूल्य है। आप पाँच सामायिक करें, हम सामायिक-साधना की प्रेरणा करते हैं पर पाँच सामायिक करने वाले को सोचना चाहिये कि मेरी कषायें कमजोर हुई हैं या नहीं? यदि कषायें मन्द नहीं हुई तो कहना होगा साधना का जितना लाभ मिलना चाहिये वह नहीं मिल रहा है। आज साधन को ही साध्य समझने की भूल हो रही है। आत्मलक्ष्यी धर्म क्रियाएँ गौण हो रही हैं। मात्र बाह्य क्रियाओं को ही प्रधानता देकर आदमी संतुष्ट हो जाता है कि हो गया धर्म। कभी-कभी तो बाह्य धर्म-क्रियाओं की परम्परा को लेकर इतना विवाद हो जाता है कि धर्म का मूल क्षमा, समत्वभाव ही पीछे छूट जाता है अर्थात् कषाय घटने की बजाय बढ़ जाता है, धर्म तक बदनाम हो जाता है। लोगों की धर्म के प्रति अनास्था जग जाती है। यद्यपि धर्म तो शुद्ध था, शुद्ध है और शुद्ध ही रहेगा मगर धर्मक्रिया करते हुए भी कषाय नहीं छूटता तो धर्म प्रभावशाली नहीं बन पाता। कषाय प्रतिक्रमण इस बात का सूचक है कि जो धर्मक्रियाएँ हम कर रहे हैं वे कितनी आत्मलक्ष्यी बन पाई है? कितना कषाय मंद हुआ? कितना उपशांत भाव जगा? कितनी अनासक्ति जगी? संसार के प्रति उदासीनता का भाव कितना जगा? द्रव्य रूप से तो इस जीव ने धर्म-क्रियाएँ करने में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक भवों में अनेक बार प्रयास किये, लेकिन भाव शुद्धि के सूचक कषाय प्रतिक्रमण को लेकर अन्तरात्मा में जागृति नहीं रही। यही कारण है धर्म-क्रियाएँ करते हुए भी साधना की सिद्धि में मंजिल नहीं मिल रही है। स्वयं सिद्धसेन दिवाकर ने कल्याणमंदिर स्तोत्र की रचना करते हुए भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति में अपने अन्तर्मन के उद्गारों को प्रकट करते हुए कहा-

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि, नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं, यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्या।।

हे प्रभो! मेरे इस जीव ने आपके दर्शन किए, आपका प्रवचन सुना, आपकी महिमा गाई। हे भगवन्! मैंने इतना सब-कुछ किया, लेकिन मैंने आपकी वाणी को अन्तर्हृदय में नहीं उतारा, इसलिए दुःख का भाजन बना हुआ हूँ। उचित ही है कि भाव के बिना क्रियाएँ सफल नहीं होती है।

श्रावक विनयचन्दजी ने भी इसी बात को पुष्ट करते हुए कहा-

साधुपणो नहीं संग्रह्यो, श्रावक व्रत न किया अंगीकार के।
आदर्‍या तो न आराधिया, तेहथी रूलियो हूँ अनन्त संसार के ।।

श्री मुनिसुव्रत साहिबा....

कितनी सुन्दर बात कही है। कवि श्री विनयचन्द जी ने २०वें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत भगवान की महिमा गाते हुए कहा- ''आदर्‍या तो न आराधिया'' अर्थात् व्रत और महाव्रत स्वीकार तो अनेक बार किये, मगर आराधकता नहीं जगी। आराधकता का मतलब है प्रतिपल जागरूकता। सम्यक्त्व के समय आयुष्य का बंध। कषाय की मन्दता में हमारा चिन्तन और तदनुरूप जीवन को ढालना। एक बार जीव आराधक हो जाय तो वह पन्द्रहवें भव का उल्लंघन नहीं करता। इसके विपरीत बाह्य व्यवहार में भगवान गौतम के समान कठोर क्रिया करने वाले एवं अनेक पूर्वधर भी आज निगोद में बैठे हैं। कारण क्या?. कारण है ज्ञान सीखा, क्रिया की, पालना भी की, पर कषाय भाव नहीं छूटा तो मानो बिना अंक के सारे शून्य व्यर्थ हो गए।

कषाय का सरलार्थ भी है- कष+आय, जिसमें पापों का आगमन हो, वह कषाय। पापों से भारी हुई आत्मा तो निश्चय ही अधोगति की ओर ही प्रयाण करेगी। कषाय, आत्मा का स्वभाव नहीं है। कषाय में, विकारों में रहना आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा क्रोध में नहीं रह सकता। आप व्यवहार में देख सकते हैं। आप हमेशा क्रोध में रहना चाहें तो रह नहीं सकते। क्यों? तो यह आत्मा का स्वभाव नहीं है। इसका मतलब जीव जब-जब क्रोध करता है, दूसरों के प्रति द्वेष बुद्धि रखता है, बदले की भावना से ग्रस्त रहता है, दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या में दग्ध रहता है, जरा सी प्रतिकूलता में उबल पड़ता है, तकरार कर बैठता है, दूरियाँ बढ़ा लेता है। आने-जाने का, मिलने तक का व्यवहार बंद कर देता है, विद्वेष भावना के साथ अगले की निन्दा-विकथा करने से नहीं चूकता, सदा दूसरे के दोष देखकर बुराई में लिप्त रहता है तो यह सब प्रवृत्तियाँ विभाव दशा की सूचक हैं अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभाव का अतिक्रमण है। अतः जरूरत इस बात की है कि कषाय प्रतिक्रमण से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समरसता, माधुर्य, करुणा, सेवा, सौम्यता, आत्मीयपन जैसे मौलिक गुणों की वृद्धि हो। जीवन में स्व-पर का उपकार हो। स्व-जीवन के साथ सर्वत्र अपनत्व व प्रसन्नता का वातावरण निर्मित हो। जीवन में निर्दोष भाव जगे, स्वयं के लिए कर्मनिर्जरा का अनुकूल वातावरण निर्मित हो और कर्मबंध से जीव बचे। जरूरत है कषाय प्रतिक्रमण के लिए सतत विवेक एवं जागरूकता की। आपको ध्यान है मध्य के २२ तीर्थंकरों के शासनवर्ती श्रमणों के लिए उभयकाल प्रतिक्रमण करना अनिवार्य नहीं था। उन श्रमणों को जब भी दोष दृष्टिगत होता वे तत्काल प्रतिक्रमण कर लेते, अर्थात् दोषों का परिमार्जन कर लेते, क्योंकि वे प्राज्ञ एवं ऋजुभाव युक्त होते थे। उस समय के साधु सतत जागरूक रहते। हम भी कषाय प्रतिक्रमण से संबंधित जागरूकता का परिचय देने के लिए प्रति समय विवेक का नेत्र खुला रखें।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जवभावेण, लोहं संतोसओ जिणे ।।

अर्थात् जब-जब भी कषाय का प्रसंग उपस्थित हो, उस समय इस गाथा के माध्यम से विधेयात्मक दृष्टिकोण को विकसित करें जिससे कषाय के प्रति ग्लानि का भाव जग सके और विचार व आचार में कषाय मुक्त संस्कार जग सकें।

आज अहिंसा पर जितना विश्वास है, कषाय मुक्ति को लेकर कहना होगा अभी संस्कार जमे ही नहीं हैं। किसी भावुक भक्त के हाथ से कभी कोई चूहा या चिड़ी का बच्चा अचानक मर जाता है तो आदमी ग्लानि से भर जाता है। कभी-कभी तो हम संतों के पास आकर कुछ भाई कहते भी हैं- गुरुदेव! आज गलती से चूहा मर गया। इसलिए असावधानी से हुई इस जीव हिंसा के लिए आप प्रायश्चित्त फरमाओ।

प्रायश्चित्त लेना अच्छी बात है। प्रायश्चित्त लेना चाहिये, पर समझने की बात है कि जीव हिंसा को लेकर आपको जितना मलाल है, हिंसा के कारण मन में जो ग्लानि पैदा हुई है तो क्या क्रोध होने पर भी इसी तरह प्रायश्चित्त लेने की भावना आती है? एक-दूसरे का एक-दूसरे के साथ टकराव हो गया। क्या उस समय मन में ग्लानि का अनुभव होता है? क्या प्रायश्चित्त लेने की इच्छा होती है? बहुत कम लोग हैं जो क्रोध, मान, माया, लोभ के उत्पन्न होने पर इस तरह विचार करते हैं। हाँ, ऐसे तो बहुत मिल जायेंगे जो ईंट का जवाब पत्थर से देने में ही अपना गौरव समझते हैं, क्रोध में किसी पर रोब जमाकर संतुष्ट होते हैं, उसी में अपनी शान समझते हैं, बदले की भावना से अवसर की फिराक में रहते हैं और मौका मिलते ही बदला लेकर उसी में जीवन की जीत समझते हैं।

आज सहनशीलता घटती जा रही है। क्या अमीर क्या गरीब, क्या सत्ताधीश क्या कर्मचारी, क्या छोटा क्या बड़ा, क्या बच्चा क्या बूढ़ा, हर एक की नाक पर जैसे गुस्सा बैठा ही रहता है। किसी ने ठीक ही कहा- ''ना हम बहरे हैं ना हम गहरे हैं, सच पूछो तो हम नए जमाने के चेहरे हैं। इसीलिए हमारे जीवन में अविवेक और गुस्से के पहरे हैं।'' क्या बताऊँ आपको, एक बार किसी घर में गोचरी जाने का प्रसंग बना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखा, एक मुन्ना कौने में उदास खड़ा था। मैंने बच्चे से पूछ लिया- क्या नाम है? बच्चा बोला नहीं। इतने में मेरी आवाज को सुनकर बच्चे की मम्मी आ गई। वह कहने लगी- गुरुदेव! मुन्ने का आज मूड ऑफ है। मैंने विचार किया कि- "मुन्ने के अभी दूध के दाँत भी नहीं सूखे फिर उसका मूड ऑफ होना क्या अर्थ रखता है?" यानी घर-परिवार में कषाय रंजित वातावरण होगा तो छोटे या बड़े का कब मूड ऑफ हो जाय, पता नहीं। क्षमा के संस्कार न होने के कारण छोटी-छोटी बातों में आदमी उलझ जाता है, धैर्य खो बैठता है, संबंधों में दरार आ जाती है, एक-दूसरे के प्रति कटुता का भाव बढ़ जाता है और कठोर-कर्कश भाषा में एक-दूसरे पर बौछार कर बैठते हैं। एक बार किसी एक बच्चे ने पापाजी से पूछा- पापाजी युद्ध शब्द का क्या अर्थ है? पापाजी बच्चे को 'युद्ध' शब्द का अर्थ समझा रहे थे, इतने में बच्चे की मम्मी आ गई। मम्मी ने कहा- इसमें क्या यह तो मैं ही बता दूँ। बच्चे का पापा बोला- तू क्या ज्यादा जानती है? पत्नी बोली- क्या आप ही सारा जानते हैं? एक-दूसरा, एक-दूसरे को कहने लगा। दोनों का विवाद देखकर बच्चा बोला- मुझे युद्ध शब्द का अर्थ समझ में आ गया। वहाँ कोई बँटवारा नहीं था, लेन-देन भी नहीं था। हाँ जमीन-जायदाद के बँटवारे में फिर भी कहा-सुनी हो सकती है, कोर्ट कचहरी तक पहुँच सकते हैं, लेकिन पति-पत्नी एक शब्द में उलझ जाय, हद हो गई अर्थात् इस कदर सहनशीलता घटती जा रही है। कभी-कभी संत-भगवंत प्रेरणा देते हैं- आपस में राग-द्वेष नहीं रखना। अगर कभी किसी से कहा-सुनी या मनमुटाव हो जाय तो खमतखामणा कर लें। मगर ध्यान रखें- खमतखामणा इस तरह हो कि समरसता बढ़े, मधुरता बढ़े, मैत्री और अपनत्व में वृद्धि हो। इस तरह क्षमायाचना न हो कि गये तो खमतखामणा करने और ज्यादा उलझ पड़े। एक बार एक संत की प्रेरणा पाकर एक भाई खमतखामणा करने गया और अगले से कहने लगा- भाई! महाराज साहब की प्रेरणा से तेरे से खमतखामणा करने आया हूँ वरना तूने मेरे साथ क्या-क्या किया मेरा जीव जानता है। यह सुनकर अगला कहने लगा- रहने दे, रहने दे मैं भी जानता हूँ तूने मेरे साथ क्या-क्या किया। देखा, आपने गया तो था क्षमायाचना के लिए मगर पुनः उलझ पड़ा।

खमतखामणा कार्ड से नहीं, हार्ट से होना चाहिये- "लड़ाई तो हो भाई से और खमतखामणा ब्याही से।" तो यह कैसा खमतखामणा? झगड़ा भाई-भाई में हो सकता है। सगे-संबंधियों में कहा-सुनी हो सकती है। अड़ौसी-पड़ौसी से मन-मुटाव हो सकता है। कभी कोई बोलने में ऊँचा-नीचा कह दे तो आदमी का पारा चढ़ सकता है। मगर गाँठ बाँधकर नहीं रखें, लेकिन देखा जाता है कि गाँठ इस तरह बाँध कर रखते हैं कि आपस में आना-जाना बंद, बोलचाल बंद, सब तरह के आपसी व्यवहार भी बंद कर देते हैं।

भगवान् ने हम साधुओं को उपदेश दिया- तुम्हें अनुभव हो जाय कि तुम्हारे व्यवहार से सामने वाले का दिल दुःखा है तो तत्काल क्षमायाचना कर लें। जब तक क्षमायाचना नहीं कर लें, गोचरी के लिए नहीं जायें, तब तक स्वाध्याय भी नहीं करें, लेकिन पहले जिसका दिल दुःखाया है उससे जाकर क्षमायाचना करें। किसी के घर में कभी आग लग जाय तो आदमी क्या करता है? क्या वह पहले खाना खाता है? नहीं, वह सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम छोड़कर पहले आग बुझाता है। संत भी सब काम छोड़कर क्षमायाचना करे। यदि संत पन्द्रह दिन का उल्लंघन करता है तो वह भगवान की दृष्टि में साधुत्व के योग्य नहीं। किसी के चार महीने निकल जायें और उसके द्वेष की गाँठ भीतर में बनी रहे तो उसका श्रावकपना नहीं रहता। साल भर बीत जाने पर भी द्वेष की गाँठ नहीं खोले, खमतखामणा करके शुद्धीकरण नहीं करे तो उसकी समकित का ठिकाना नहीं रहता अर्थात् वह मिथ्यात्व में आ जाता है। वह फिर चाहे जितनी सामायिक करे उसकी सामायिक सच्ची सामायिक नहीं कहलाती। सामायिक नहीं सो नहीं, तपस्या भी तपस्या नहीं रहती। व्रत, व्रत नहीं रहता। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा- ''निःशल्यो व्रती'' मिथ्यात्व भी एक शल्य है और इस मिथ्यात्व शल्य के रहते किसी भी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान फिर भले ही वह व्रत, नियम, तपश्चर्या आदि हो, लेकिन कर्म-निर्जरा के खाते में नहीं जाता। अतः किसी प्रकार का शल्य नहीं रखें। भले ही अगला द्वेष रखता हो, मगर आप अपने भीतर क्षमाभावना, मैत्री भावना, करुणा भावना, सेवा और अनुकम्पा को स्थान दें यह आपका सच्चा कषाय प्रतिक्रमण कहलायेगा।

तपस्वी बहन के दीर्घतपःपूर्ति के प्रसंग पर जयपुर में उस आयोजन में आचार्य भगवन्त (हस्तीमल जी म.सा.) ने स्पष्ट और खरी टिप्पणी की राजनेताओं पर। यह बात उपस्थित राजनेता को जरा अखर गई और उन्होंने भी अपने भाषण के दौरान भाषा का विवेक नहीं रखा, परिणामस्वरूप श्रद्धालु भक्त अवज्ञा को देख आवेश में थे, पर गुरुदेव शान्त-सौम्य स्वभाव में स्थित रहे। सायंकाल इसी प्रसंग को लेकर डागाजी ने गुरुदेव से कहा-''गुरुदेव आप लब्धिधारी महापुरुष हैं आज तो महादेव की तरह तीसरा नेत्र खोल देते।'' षट्काय प्रतिपाल, मैत्री व करुणा के सागर, समत्व के आराधक उन महापुरुष का प्रत्युत्तर था- ''भोलिया! क्यों ऐसा चिन्तन कर पंचेन्द्रिय वध के पाप का पाप बंध कर रहा है। कुछ करना तो दूर मेरे मन में ऐसी बात भी आ जाती तो मेरी साधुता ही चली जाती।''

इसे कहते हैं- सच्चा समत्व व सच्ची साधुता। जहाँ इस प्रकार की अवज्ञा रूप प्रतिकूलता में उन्होंने अपने आत्मस्वभाव में स्थित रहते हुए कषाय को प्रवेश तक नहीं होने दिया। अर्थात् शुद्ध आत्मिक दशा का अतिक्रमण नहीं होने दिया।

आपको ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं है। यह शरीर भी हमको प्रेरणा दे रहा है। बाहर का तापमान चाहे '०' डिग्री हो चाहे '४८' डिग्री, स्वस्थ दशा में इस शरीर का तापमान एक-सा बना रहता है। आप जानते हैं स्वस्थ शरीर की निशानी है ९८.६ डिग्री फारेनाइट तापमान। जब आपके शरीर का तापमान एक-सा रहता है तो दिल-दिमाग का तापमान क्यों नहीं एक-सा रखते। आप बात-बात में उखड़ेंगे नहीं तो आपमें समरसता रहेगी, वातावरण भी विषाक्त नहीं होगा।

आप प्रतिक्रमण आवश्यक में विभिन्न व्रतों, दोषों व अतिचारों का चिन्तन करने के अनन्तर प्रभु की भाव-वन्दना करके 'खामेमि सव्वे जीवा....' का पाठ बोलते हैं। क्या इसके भावार्थ का भी हमने चिन्तन किया है- साधक कायोत्सर्ग प्रत्याख्यान से पूर्व यह पाठ बोलते हुए चिन्तन करता है- मैं सभी जीवों को क्षमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता हूँ यानी मेरे क्रोध भाव का शमन करता हूँ, दूसरों के दोष की स्मृति व कल्पना को ही निःशेष करता हूँ। (खामेमि सव्वे जीवा)। आगे वह चिन्तन करता है सभी जीव मुझे क्षमा करें। प्रथम भावार्थ तो यही कि दूसरों में दोष देखने वाला, दूसरों के अपवाद, अवर्णवाद को याद न रखने वाला ही विनम्र भाव से क्षमायाचना करने का अधिकारी है। क्रोध भाव छूटा तो व्यक्ति अपने को सामान्य समझेगा, अपने में ही दोष देखेगा तो मान, अहंकार, अभिमान स्वतः छूटेगा और वह विनम्र बन छोटे से छोटे व्यक्ति के समाने झुक कर अनुनय करेगा-आप मुझे क्षमा करें, मेरे द्वारा हुए अपराधों के लिए मुझे क्षमा प्रदान करें। (सव्वे जीवा खमन्तु मे) क्रोध छूटा, अभिमान विगलित हुआ, व्यक्ति अपने को दोषी व दूसरों को गुणी मानने की ओर बढ़ा, तो भला माया को स्थान कहाँ। परगुणदर्शन, परगुणवर्णन व परगुण चिन्तन आते ही जीवमात्र के साथ बंधुत्वभाव, मैत्रीभाव विकसित हुआ। जीव सहज ही बोल पड़ता है- सभी जीव मेरे मित्र हैं (मित्ती मे सव्वभूएसु)।

अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि स्वार्थपूर्ति की ओर संलग्न रहती है। उस स्वार्थपूर्ति में जो वस्तु/व्यक्ति बाधक बनता है, साधक उसके साथ वैर कर लेता है, लेकिन जहाँ मैत्रीभाव विकसित हो जाता है तो ऐसे मैत्रीभाव से सिक्त साधक संतोष को भीतर में जगाता हुआ अर्थात् लोभ का परिहार करता हुआ किसी के प्रति वैर नहीं पालता और उसका अन्तर्मन बोल उठता है- वेरं मज्झं न केणई।

जरा जैन इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों की ओर दृष्टिपात करें। श्रावक श्रेष्ठ सिन्धु सौवीर नरेश उदयन पौषध में प्रतिक्रमण के पश्चात् चौरासी लक्ष जीवयोनि के साथ क्षमायाचना करते हुए क्या चिन्तन करता है- मैंने चौरासी लक्ष जीवयोनि से क्षमायाचना की है। बंदीगृह में बंद सम्राट् चन्द्रप्रद्योत भी तो चौरासी लक्ष जीवयोनि में शामिल है, उनसे क्षमायाचना नहीं की तो मेरी क्षमायाचना, मेरा प्रतिक्रमण, मेरी पौषध-साधना अधूरी है। पहुँचे चन्द्रप्रद्योत के सामने, क्षमायाचना की। बंदीगृह में पड़े चन्द्रप्रद्योत ने श्रावक शिरोमणि को ललकारा। यह कैसी क्षमायाचना, यह कैसा ढोंग। अगर क्षमायाचना ही करनी है तो पहले मुझे मुक्त करो, मुझे स्वर्णगुलिका व अनलगिरी (हाथी) व मेरा राज्य लौटाओ। कैसी परीक्षा की घड़ी थी, पर श्रमण भगवान महावीर का सच्चा श्रावक वहाँ भी उत्तीर्ण हुआ व क्षमा का सच्चा आदर्श प्रस्तुत कर चन्द्रप्रद्योत का बन्दीगृह से मुक्त करते हुए इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अपनी छाप अंकित कर गया। यह कषाय प्रतिक्रमण का उत्कृष्ट अनुकरणीय प्रेरक उदाहरण है जिसे हृदयंगम कर, अनुसरण कर आप भी सच्चा प्रतिक्रमण कर सकते हैं।

प्रतिक्रमण से आत्म-शुद्धि होती है। आप जब भी प्रतिक्रमण करें और 'मिच्छा मि दुक्कडं' दें तो आत्मा की आवाज के साथ दें। यही कषाय प्रतिक्रमण है। आत्मा की शुद्धि के लिये समत्व का गुण बढ़ाएँ और कषायों को दूर करें, ऐसा करने पर निश्चय ही जीवन सार्थक हो सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org